Shodhaamrit, Vol.-2; Issue-2 (July-Dec.) 2025 : Page No.-337-342

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No- 337-342

©2025 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Dr. Sumit kumar
sr. Assistant professor,
Department of philosophy, S.M. College, Bhagalpur, TMBU.

एकांत, अवसाद और आधुनिक अस्तित्व: 21वीं सदी का अस्तित्ववादी संकट

सारांश : आज की 21वीं सदी में मानव अस्तित्व गहरे दार्शनिक संकट से गुज़र रहा है, जो एकांत, अवसाद और जीवन के अर्थहीन अनुभव में प्रकट होता है। आधुनिक समाज में परंपरागत मान्यताओं के टूटने, तेज़ तकनीकी परिवर्तन और सामाजिक विघटन ने व्यक्तियों को अस्तित्ववादी प्रश्नों के सम्मुख ला खड़ा किया है। पश्चिमी अस्तित्ववादी विचारकों – जैसे ज्याँ-पॉल सार्त्र, आल्बेर कैमू और मार्टिन हाइडेगर – ने मानव जीवन की निरर्थकता, स्वतंत्रता के बोझ और "निराशा" पर विचार किया है। उन्होंने तर्क दिया कि ईश्वर की अनुपस्थिति या "मृत्यु" के बाद मनुष्य को स्वयं अपने जीवन का अर्थ गढ़ने के लिए **"स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त"** होना पड़ता है। दूसरी ओर, भारतीय दार्शनिक परंपरा – उपनिषद, भगवद्गीता, योगवासिष्ठ आदि – आत्मज्ञान, कर्मयोग और आध्यात्मिक बोध के माध्यम से अस्तित्वगत संकट का समाधान प्रस्तुत करती है। इस शोध पत्र में एकांत और अवसाद के प्रसंग में आधुनिक अस्तित्ववादी संकट का विश्लेषण किया गया है तथा पश्चिमी और भारतीय दृष्टिकोणों की तुलनात्मक समीक्षा की गई है। पश्चिमी अस्तित्ववाद जहां मानव जीवन की अब्सर्ड (निरर्थक) प्रकृति पर बल देता है, वहीं भारतीय दर्शन आत्मा-परमात्मा की एकता और मोक्ष के मार्ग से जीवन के परम उद्देश्य को रेखांकित करता है। शोध में पाया गया है कि अस्तित्वगत संकट का समकालीन समाधान इन दृष्टिकोणों के संतुलन – व्यक्तिगत स्वतंत्रता की स्वीकृति तथा आध्यात्मिक अर्थ की खोज – में निहित हो सकता है।

मुख्य शब्द : एकांत, अवसाद, अस्तित्ववादी संकट, अस्तित्ववाद, पश्चिमी दर्शन, भारतीय दर्शन, आत्मज्ञान, आधुनिकता।

1. परिचय : 21वीं सदी के आरम्भिक दशकों में मानवता एक अद्वितीय अस्तित्वगत संकट का सामना कर रही है, जिसमें व्यक्तियों को अपने जीवन के अर्थ, उद्देश्य और पहचान पर गहन संशय होने लगा है। भौतिक प्रगति और तकनीकी विकास के बावजूद अकेलापन और अवसाद जैसी मनोवैज्ञानिक चुनौतियाँ बढ़ती जा रही हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की

Corresponding Author :
Dr. Sumit kumar
sr. Assistant professor,
Department of philosophy, S.M. College, Bhagalpur, TMBU.

एक रिपोर्ट के अनुसार विश्वभर में हर छह में से एक व्यक्ति किसी न किसी डिग्री पर सामाजिक एकाकीपन का अनुभव कर रहा है। साथ ही, वैश्विक स्तर पर अवसाद रोग व्याप्त हो चुका है – **वर्ष 2017 में डब्ल्यू.एच.ओ. ने अवसाद को विश्व में अस्वस्थता और अकार्यशीलता का प्रमुख कारण घोषित किया**। स्पष्टतः, यह मात्र चिकित्सीय समस्या नहीं है, बल्कि इसका संबंध हमारे आधुनिक अस्तित्व की गुणवत्ता से है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के युग में हम हर पल जुड़े रहने के बावजूद भीतर से अलग-थलग महसूस कर सकते हैं। ऐसी परिस्थिति को "अस्तित्ववादी संकट" कहा जा सकता है – जब व्यक्ति अपने जीवन के मूल्यों, लक्ष्य और अर्थ पर प्रश्नचिह्न लगाने लगता है।

दार्शनिक रूप से यह संकट नया नहीं है, परंतु आधुनिक युग में इसकी अभिव्यक्ति अभूतपूर्व स्तर पर हो रही है। सामाजिक संरचनाओं के विघटन और परंपरागत विश्वासों के क्षय ने व्यक्तियों को मूल्यहीनता के शून्य में ला खड़ा किया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एमिल दुर्काइम ने 19वीं सदी में ही चेतावनी दी थी कि तेज़ी से बदलते आधुनिक समाज में सामूहिक मूल्यों का विघटन "एनॉमी" (मानव-दिशाहीनता) को जन्म देता है, जिससे आत्महत्या एवं निराशा की दरें बढ़ती हैं (दुर्खीम, 1897)। वास्तव में, 20वीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते दार्शनिकों ने देख लिया था कि ईश्वर या पारंपरिक अर्थ-व्यवस्थाएं कमजोर पड़ने पर मानव "अर्थ-शून्यता" के संकट से जूझने लगता है। फ्रेडरिक नीट्शे ने 1880 के दशक में ही यह उक्ति दी – **"ईश्वर मर चुका है"** – जो पश्चिमी जगत में परम अर्थ के अभाव का द्योतक थी (नीत्शे, 1882)। इस उक्ति के निहितार्थ 20वीं सदी में स्पष्ट हुए, जब अस्तित्ववाद एक प्रमुख दार्शनिक आंदोलन के रूप में उभरा। अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने मानव जीवन की निरर्थकता, स्वतंत्रता के भार और व्यक्तिगत चुनाव की अनिवार्यता पर गहन चिंतन किया। दूसरी ओर, भारतीय दार्शनिक परंपरा ने सहस्राब्दियों पहले से ही जीवन के दुःख (दुःख) और उससे मुक्ति के उपायों पर चिंतन किया था। उपनिषदों में आत्मा-परमात्मा के स्वरूप पर विमर्श, श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन के नैराश्य का समाधान, तथा योगवासिष्ठ में भगवान राम के विषाद का वर्णन – ये सभी उदाहरण दिखाते हैं कि भारतीय चिंतन ने भी अस्तित्व के गहन प्रश्नों से जूझते हुए समाधान प्रस्तुत किए हैं।

इस शोध पत्र में, हम आधुनिक अस्तित्ववादी संकट के वास्तविक आयामों को पश्चिमी और भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण से उजागर करेंगे। प्रथम, 21वीं सदी में एकांत एवं अवसाद की बढ़ती समस्या तथा उसके संभावित कारक (जैसे सामाजिक विखंडन, आध्यात्मिक शून्यता) पर चर्चा होगी। तत्पश्चात, पश्चिमी अस्तित्ववादी विचारकों के सिद्धांतों का विश्लेषण किया जाएगा, जो आधुनिक मानव की निराशा, चिंता और अर्थ-खोजना को दर्शाते हैं। इसके बाद भारतीय दर्शन – विशेषतः उपनिषद, भगवद्गीता और योगवासिष्ठ – की शिक्षाओं के आलोक में अस्तित्वगत संकट के वैकल्पिक दृष्टिकोण और समाधान पर विचार होगा। अंत में, निष्कर्ष स्वरूप यह आकलन किया जाएगा कि किस प्रकार 21वीं सदी के इस अस्तित्ववादी संकट का सामना करने हेतु पश्चिमी और पूर्वी दर्शन की अंतर्दृष्टियों को समन्वित करके एक संतुलित मार्ग अपनाया जा सकता है।

2. 21वीं सदी में एकांत और अवसाद : आधुनिक अस्तित्व का परिदृश्य : आधुनिक युग असत्यवत रूप से मनुष्यों को अभूतपूर्व सुविधा और जुड़ाव देता हुआ भी आंतरिक एकाकीपन को बढ़ावा दे रहा है। शहरीकरण, एकल परिवारों का प्रसार और आभासी संचार (वर्चुअल कम्युनिकेशन) ने सामाजिक संबंधों की प्रकृति बदल दी है। बहुत से लोग वास्तविक दुनिया में घनिष्ठता और सामुदायिक साहचर्य से वंचित होते जा रहे हैं, जबकि उनकी ऑनलाइन उपस्थिति सक्रिय दिख सकती है। फलस्वरूप, व्यक्ति **"भावनात्मक एकांत"** में जीने को मजबूर है, जहां आसपास जनसमूह होते हुए भी उसे समझने वाला कोई नहीं। चिकित्सा मनोविज्ञान बताता है कि लगातार अकेलेपन का भाव अवसाद को जन्म दे सकता है, और अवसाद व्यक्ति के अस्तित्व के प्रति दृष्टिकोण को नकारात्मक बना देता है। अवसादग्रस्त व्यक्ति न केवल दुख अनुभव करता है, बल्कि जीवन के अर्थ और मूल्य पर भी संदेह करने लगता है।

वर्तमान आँकड़ों पर नज़र डालें तो तस्वीर चिंताजनक है। डब्ल्यू.एच.ओ. की एक हालिया रिपोर्ट के मुताबिक, "सामाजिक पृथक्करण और अकेलापन विश्वभर में व्यापक हैं, लगभग 16% लोग – प्रत्येक छह में से एक – किसी न किसी स्तर पर अकेलेपन से पीड़ित हैं"। इसी तरह, **दुनिया भर में 30 करोड़ से अधिक लोग अवसाद से ग्रस्त हैं और अवसाद 21वीं सदी में वैश्विक अस्वस्थता का प्रमुख कारक बन चुका है** (डब्ल्यू.एच.ओ., 2017)। विशेषकर युवा पीढ़ी में, जिसे तकनीकी रूप से सर्वाधिक जुड़ा हुआ माना जाता है, अकेलेपन और उद्देश्यहीनता की भावना बढ़ रही है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के एक अध्ययन में पाया गया कि जो वयस्क अत्यधिक अकेलापन महसूस करते हैं, उनमें अवसाद या चिंता जैसी मानसिक समस्याओं की सह-घटना दर 80% से अधिक है। स्पष्ट है कि आधुनिक मानव के सामने सिर्फ आर्थिक या शारीरिक चुनौतियाँ ही नहीं, बल्कि गहन मनो-दार्शनिक चुनौतियाँ भी हैं।

यह परिस्थिति एक "आधुनिक अस्तित्ववादी संकट" के रूप में वर्णित की जा सकती है, जिसमें व्यक्ति को अपने जीवन की सार्थकता पर ही संशय होने लगता है। जब जीवन की बाहरी आवश्यकताएँ पूरी होने के बाद भी आंतरिक संतोष न मिले, तो अस्तित्वगत प्रश्न उभरते हैं: "मैं कौन हूँ? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? क्या जीवन बस एक बेमानी संघर्ष है?" ऐसे प्रश्न वे व्यक्ति अधिक पूछते हैं जो किसी न किसी कारण से समाज से कटाव महसूस करते हैं या गहरे अवसाद से जूझ रहे होते हैं। उदाहरणस्वरूप, कोविड-19 वैश्विक महामारी के दौरान लगे लॉकडाउन में कई लोगों ने पहली बार तीव्र एकांत का सामना किया और अपने अस्तित्व पर नए सिरे से चिंतन किया। आधुनिक काल की यह विशिष्ट समस्या दार्शनिक और मानसिक स्वास्थ्य – दोनों क्षेत्रों का सरोकार बन चुकी है।

पश्चिमी मनोचिकित्सक विक्टर फ्रैंकल, जो स्वयं नाज़ी यातना शिविर से बचे थे, ने अनुभव किया था कि **मनुष्य मात्र रोटी नहीं, बल्कि अपने जीवन में अर्थ की रोटी से भी जीवित रहता है**। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मनुष्य की अर्थ-खोज' में फ्रैंकल लिखते हैं कि यदि व्यक्ति अपने दुःख में कोई अर्थ खोज ले, तो वह किसी भी "कैसे" को सहन कर सकता है (फ्रेंकल, 1946)। लेकिन आधुनिक समस्या यह है कि बहुतों को कोई अर्थ दिखाई नहीं देता। जब व्यक्ति को अपने अस्तित्व का कोई उद्देश्य नजर नहीं आता, तो अवसाद में डूबना सहज हो जाता है – इसे मनोविज्ञान में "अस्तित्वगत अवसाद" भी कहा जाता है, जहाँ उदासी का मूल कारण जीवन को निरर्थक मानना है। इस अवस्था में व्यक्ति पारंपरिक खुशियों या उपलब्धियों से संतुष्ट नहीं हो पाता, क्योंकि उसके मूल प्रश्न – "आखिर ये सब क्यों?" – अनुत्तरित रह जाते हैं।

सारांशतः, 21वीं सदी का सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य व्यक्तियों को भौतिक प्रगति के साथ-साथ गहन अस्तित्वगत चुनौतियाँ भी दे रहा है। एकांत और अवसाद इस बड़े संकट के लक्षण मात्र हैं, जिनकी जड़ जीवन के अर्थ का अभाव है। अगले खंडों में हम देखेंगे कि पश्चिमी अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने इस परिस्थिति को कैसे समझा और प्रस्तुत किया, और फिर भारतीय दार्शनिकों ने इससे मिलते-जुलते प्रश्नों का क्या उत्तर दिया।

3. पश्चिमी अस्तित्ववाद: निरर्थकता, स्वतंत्रता और निराशा : पश्चिमी जगत में अस्तित्ववाद 20वीं शताब्दी के मध्य के आसपास एक प्रमुख दर्शन के रूप में उभरा, यद्यपि इसके बीज 19वीं शताब्दी के चिंतकों में मिलते हैं। अस्तित्ववाद का मूल स्वर यह है कि **मनुष्य का अस्तित्व उसके सार से पूर्व आता है**—अर्थात् पहले हम अस्तित्व में आते हैं, फिर अपने कर्मों और चुनावों से अपना "सार" या अर्थ गढ़ते हैं (सार्त्र, 1946)। जब पारंपरिक धर्म या आध्यात्मिक मान्यताएँ कमजोर पड़ीं, तब विचारकों ने महसूस किया कि मनुष्य अब जीवन के अर्थ के लिए ब्रह्मांड या ईश्वर पर निर्भर नहीं रह सकता। इसी अनुभव को आल्बेर कामू ने अब्सर्ड कहा—एक ऐसा संसार जहाँ मनुष्य अर्थ खोजता है, पर ब्रह्मांड तटस्थ और निष्प्रतियुत्तर रहता है। कामू का प्रसिद्ध कथन है: "केवल एक ही वास्तव में गंभीर दार्शनिक समस्या है, और वह है आत्महत्या"; अर्थात् जब जीवन का कोई स्पष्ट अर्थ न दिखे, तो व्यक्ति को पहले यही प्रश्न घेरता है कि जीवन को समाप्त क्यों न कर लिया जाए (कामू,

1942)। यह कथन आधुनिक निराशा की तीव्रता को उजागर करता है।

डेनमार्क के दार्शनिक सोरेन किर्केगार्ड (1813–1855), जिन्हें अस्तित्ववाद का प्रवर्तक भी कहा जाता है, निराशा को मानवीय आत्मा का "रोग" मानते हैं। मृत्यु की ओर ले जाने वाली बीमारी में वे कहते हैं कि निराशा आत्मा को वैसे ही ग्रसती है जैसे शारीरिक रोग शरीर को (कियर्केगार्ड, 1849)। उनके अनुसार यह निराशा तब उपजती है जब व्यक्ति अपने वास्तविक आत्म से विमुख हो जाता है या ईश्वर से संबंध नहीं जोड़ पाता। यद्यपि उनकी चिंता धार्मिक थी, पर "आत्मिक निराशा" और "चिंता" की अवधारणाएँ आगे चलकर धर्मनिरपेक्ष अस्तित्ववाद में सांसारिक धरातल पर सामने आईं।

20वीं शताब्दी के मध्य में ज्याँ-पॉल सार्त्र और मार्टिन हाइडेगर ने ईश्वर-विहीन विश्व में मनुष्य की दशा को विश्लेषण का केंद्र बनाया। सार्त्र ने अस्तित्ववाद एक मानवतावाद है में स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व पर ज़ोर देते हुए कहा: "मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है; क्योंकि एक बार संसार में फेंक दिए जाने पर, वह अपने द्वारा किए गए हर कार्य के लिए जिम्मेदार होता है"। कोई दैवी आदेश या पूर्वनियत अर्थ न होने से मनुष्य पूर्णतः स्वतंत्र है, पर यही स्वतंत्रता निर्णय और जिम्मेदारी का बोझ बन जाती है (सार्त्र, 1946)। इसी "उलझन" को सार्त्र ने अपने साहित्य में भी रचा; जी मिचलाना (1938) का नायक अंतोनी रोकैंटिन वस्तुओं और अपने अस्तित्व की अर्थहीनता महसूस कर उबकाई (न्यूज़िया) और भय से भर उठता है। यह उस क्षण का प्रतीक है जब परिचित संसार अचानक अजनबी और निरर्थक लगने लगता है।

हाइडेगर ने अस्तित्व और समय (1927) में मानव को "विश्व-मध्य" अवस्था में बताया, पर एक मौलिक मनोदशा "आंगस्ट" हमें अस्तित्व की सच्चाई से साक्षात्कार कराती है। डर किसी विशिष्ट वस्तु से होता है, जबकि आंगस्ट एक अनाम चिंता है जो दैनिक संसार का अर्थ छीन लेती है; तब मनुष्य अपने को नग्न अस्तित्व के रूप में देखता है और मृत्यु का बोध उभर आता है। हाइडेगर के अनुसार मृत्यु-बोध से प्रामाणिक जीवन संभव है, किंतु अनेक लोग "दास मान" यानी भीड़ के सतही मूल्यों में खोकर इस सत्य से बचते हैं।

इस प्रकार पश्चिमी अस्तित्ववाद नैतिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को केंद्र में रखकर दिखाता है कि 21वीं सदी का व्यक्ति एक अर्थहीन ब्रह्मांड में निर्वासित है, जहाँ उसे स्वयं अर्थ गढ़ना है (सार्त्र, 1946)। कामू के अनुसार, जीवन की बेमानी प्रकृति के बावजूद "बगावत" चुनकर सिसिफस की भाँति पूरे जीवट से जीना चाहिए (कामू, 1942)। इसलिए पश्चिमी अस्तित्ववाद एक ओर निराशा का यथार्थ चित्रण करता है, दूसरी ओर "अर्थहीनता में अर्थ खोजने" का साहस भी।

4. भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण: आत्मज्ञान द्वारा अस्तित्वगत संकट का समाधान : भारतीय दर्शन परंपरा ने मानव जीवन के अर्थ, आत्मा के स्वरूप और दुःख से मुक्ति जैसे प्रश्नों पर सहस्राब्दियों से विमर्श किया है। यद्यपि भारतीय चिंतन की पृष्ठभूमि पश्चिम से भिन्न है। यहाँ ईश्वर/परमसत्य को प्रारम्भिक सत्य के रूप में स्वीकारा जाता है फिर भी अस्तित्वगत समस्याओं के कई आयाम दोनों परंपराओं में समान रूप से उभरते हैं। विशेषकर उपनिषद, श्रीमद्भगवद्गीता और योगवासिष्ठ जैसे ग्रंथ आधुनिक "अस्तित्ववादी" संकट से मिलते-जुलते प्रसंग प्रस्तुत करते हैं तथा उनके समाधान-मार्ग भी बताते हैं। भारतीय दर्शन का केंद्रीय सिद्धांत यह है कि मनुष्य का वास्तविक स्वरूप नश्वर शरीर या चंचल मन तक सीमित नहीं, बल्कि शाश्वत आत्मा है जो परमात्मा से अभिन्न है; इस अनुभूति का अभाव ही अज्ञान एवं दुखों का मूल कारण है।

उपनिषदों में ऋषि-शिष्य संवादों के माध्यम से आत्मा, ब्रह्मांड और जीवन-मृत्यु के गूढ़ प्रश्न सामने आते हैं। कठोपनिषद में नचिकेता यम से आत्मविद्या चाहता है। यम भौतिक सुखों का लोभ देते हैं, पर नचिकेता उन्हें ठुकराते हुए कहता है: "श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः । अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥" (कथा उपनिषद 1.1.26)। यह वैराग्य आधुनिक संदर्भ में भी प्रासंगिक है, क्योंकि यह दिखाता है कि भोग और उपलब्धियाँ अंतिम प्रश्नों का उत्तर नहीं हैं।

उपनिषदों का संदेश है कि दृश्य जगत नश्वर है, आत्मा अविनाशी है। "नेति नेति" के द्वारा अपर्याप्तताओं का निषेध और "तत्त्वमसि" द्वारा आत्मा-परमात्मा की एकता का बोध (छान्दोग्य उपनिषद 6.8.7)। बृहदारण्यक उपनिषद का सार यही है कि जब आत्मा को सर्वत्र व्याप्त देखा जाता है, तो "वहाँ शोक, मोह का कोई स्थान नहीं रहता" (बृहदारण्यक उपनिषद 4.4.13, सारांश)।

भगवद्गीता में अर्जुन का युद्धभूमि-विषाद एक "अस्तित्वगत संकट का क्षण" है: "कार्पण्यदोषो-पहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ़चेताः" (भागवद गीता 1.31)। कृष्ण का प्रथम उपदेश ही दृष्टि-परिवर्तन कर देता है: "अशोच्यानन्वशोचस्त्वं..." (भागवद गीता 2.11)। आत्मा-शरीर के भेद और स्वधर्म के आलोक में वे निष्काम कर्मयोग पर बल देते हैं। विशेषकर "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्" (भागवद गीता 6.5) आधुनिक भाषा में आत्म-प्रेरणा का सघन संदेश है; मनुष्य स्वयं अपना मित्र/शत्रु है। "योगस्थः कुरु कर्माणि" का अर्थ है। फल-चिंता छोड़कर कर्तव्य में स्थिर होना।

योगवासिष्ठ प्रत्यक्षतः एक राजकुमार (राम) के अस्तित्वगत अवसाद और उसके उपचार का आख्यान है। राम संसार की क्षणभंगुरता देखकर विषादग्रस्त होते हैं; वसिष्ठ उन्हें माया, मन-विकार और आसक्ति-त्याग का उपदेश देते हैं। "कामना ही बंधन है और उसका त्याग ही मुक्ति है"। यहाँ समाधान आत्मज्ञान है। संसार में रहकर भी अनासक्ति। निष्कर्षतः, जहाँ पश्चिमी अस्तित्ववाद निरर्थक ब्रह्मांड में अकेले, स्वतंत्र किंतु व्यथित मानव को उभारता है, वहीं भारतीय दर्शन अर्थपूर्ण ब्रह्मांड में आध्यात्मिक यात्रा पर बल देता है: पश्चिम कहता है "अर्थ स्वयं गढ़ो"; भारत कहता है "परम अर्थ आत्मबोध है। ज्ञान प्राप्त करो।"

5. निष्कर्ष : 21वीं सदी का अस्तित्ववादी संकट जो एकांत, अवसाद और जीवन की अर्थहीनता के अनुभव से उपजा है वस्तुतः मानव चेतना को स्वयं के विषय में ईमानदार विमर्श के लिए बाध्य कर रहा है। इस शोध में हमने पश्चिमी और भारतीय दोनों दार्शनिक दृष्टिकोणों से इस संकट के विविध पहलुओं को जांचा। यह स्पष्ट हुआ कि आधुनिक मानव की दुविधा को पश्चिमी अस्तित्ववाद ने निर्भीकता से अभिव्यक्त किया: एक ऐसा संसार जहाँ पारंपरिक अर्थ और उद्देश्य बिखर चुके हैं, वहाँ **मनुष्य स्वतंत्र तो है पर उस स्वतंत्रता के साथ असहनीय बोझ भी जुड़ा है**। इस बोझ तले वह स्वयं को कभी बेमानी, कभी अकेला, कभी भयभीत पाता है। सार्त्र, कामू और हाइडेगर जैसे विचारकों ने दिखाया कि **निरर्थकता का सामना करते हुए भी कैसे जीना है**। अपने चुनाव द्वारा अर्थ का सृजन करके; भागने या आंख मूँद लेने के बजाय कड़वी सच्चाई को स्वीकारते हुए जीवन को अपनी जिम्मेदारी मानकर गढ़ना ही अधिक प्रामाणिक है। यह दृष्टि अवसादग्रस्त या दिशाहीन व्यक्ति को चुनौती देती है। "हाँ, दुनिया बेसर-पैर की हो सकती है, पर तुम हार मत मानो; अपनी आज़ादी का सदुपयोग कर कुछ अर्थ पैदा करो।"

वहीं भारतीय दर्शन ने **आत्मज्ञान और अध्यात्म का मार्ग** प्रस्तुत किया यह विश्वास देते हुए कि संसार का मूल स्वभाव निरर्थक या अराजक नहीं, बल्कि एक गहन आध्यात्मिक व्यवस्था (ऋतु) में संचालित है। उपनिषदों के अनुसार जीवात्मा और ब्रह्म एक ही सत्य के दो पहलू हैं; अतः देह-मात्र मानने से उपजा दुःख ज्ञान की अग्नि से नष्ट किया जा सकता है। गीता में कृष्ण अर्जुन को ज्ञान के प्रकाश से कर्तव्य-पालन की प्रेरणा देते हैं, और योगवासिष्ठ में वसिष्ठ राम को मन-कल्पनाओं के फंदे काटकर आत्मा की असीम शांति में स्थिर होने का उपदेश देते हैं। इस दृष्टि से आधुनिक व्यक्ति **बाहरी जीवन में अर्थ खोजने के बजाय अपने भीतर झांके** आत्मचिंतन, ध्यान, साधना से उस स्तर तक पहुँचे जहाँ जीवन स्वयं में पूर्ण और अर्थपूर्ण अनुभव हो। ऐसे संकेत मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में भी मिलते हैं कि आध्यात्मिक आस्था/ध्यान-प्रक्रिया अकेलेपन और अवसाद से बेहतर मुकाबले में सहायक हो सकती है (फ्रेंकल, 1946)।

अतः पश्चिमी और भारतीय दृष्टियाँ विरोधी नहीं, पूरक हो सकती हैं: पश्चिम जीवन की नंगी वास्तविकता को देखकर अर्थ गढ़ने का साहस देता है; भारत बताता है कि यह खोज शून्य में नहीं, चेतना के

अखंड समुद्र में होती है। इस समन्वय का सार ऋषि-वाणी में झलकता है। "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" (कथा उपनिषद 1.3.14)। यही जागरण आधुनिक अस्तित्ववादी संकट से मुक्ति का द्वार खोल सकता है।

संदर्भ सूची :

1. Ambika, M. S. **"Western Existentialist Philosophy and Vedanta Philosophy : A Comparative Study of Albert Camus and Advaita Vedanta."** 2018.
2. Camus, Albert. **The Myth of Sisyphus.** Translated by Justin O'Brien, Vintage Books, 1991.
3. Chandogya Upanishad. **"Tat Tvam Asi"** – in The Principal Upanishads, translated by S. Radhakrishnan, HarperCollins, 1994.
4. Durkheim, Émile. **Suicide: A Study in Sociology.** 1897. Reprint, Free Press, 1951.
5. Frankl, Viktor. **Man's Search for Meaning.** Beacon Press, 2006.
6. Heidegger, Martin. **Being and Time.** Translated by John Macquarrie and Edward Robinson, Harper & Row, 1962.
7. Katha Upanishad. **"Ephemeral are these worldly pleasures..."** – Katha Upanishad 1.1.26, translated by S. Sitarama Sastri in The Katha Upanishad with Shankara's Commentary, 1928.
8. Kierkegaard, Søren. **The Sickness Unto Death.** Translated by Walter Lowrie, Princeton University Press, 1941.
9. Nietzsche, Friedrich. **The Gay Science (Die fröhliche Wissenschaft).** Vintage Books, 1974.
10. Panda, Krishna. **"Indian and Western Philosophy: A Brief Comparative Study."** International Journal of Multidisciplinary Horizon, vol. 2, no. 1, 2025, pp. 41–47.
11. Sartre, Jean-Paul. **Existentialism Is a Humanism.** Translated by Philip Mairet, Yale University Press, 2007 (lecture delivered 1945, first published in French 1946).
12. Sartre, Jean-Paul. **Nausea.** Translated by Lloyd Alexander, New Directions, 1964.
13. Venkatesananda, Swami, translator. **Vasiṣṭha's Yoga (The Yoga Vasistha).** State University of New York Press, 1993.
14. Vyasa. **The Bhagavadgita.** Translated with commentary by S. Radhakrishnan, Blackie & Son (India), 1948.
15. World Health Organization. **"'Let's talk' says WHO, as depression tops list of causes of ill health worldwide."** WHO News Release, 30 March 2017.
16. World Health Organization. **"Social Isolation and Loneliness."** WHO Social Health Report, 30 June 2025.

•